Preface

-: आ मु ख :-

स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी साहित्य में रचना और शिल्प दोनों ही स्तरों पर आधुनिकता बोध की एक नवीन प्रवृत्ति देखने में आती है। सम-सामयिक सामाजिक और राजनीतिक सन्दर्भों को जीवन-मूल्यों की व्याख्या के लिये प्रयुक्त किया जाना स्वतंत्रता के पश्चात ही प्रारम्भ हुआ। इन्हीं माध्यमों के द्वारा जीवन की वास्तविकता अथच मूल्यविहीनता पर करारी चोट किया जाना प्रारंभ हुआ और हिन्दी का कथा-साहित्य, काव्य एवं नाटक- सभी में इसी जीवन-यथार्थ को गहनता के साथ स्पर्श करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। नाटक अपने पाठ्य और दृश्य- दोनों प्रकारों से जुड़ा होने के कारण जीवन-यथार्थ को प्रकट करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाला है। स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने रचनात्मक धरातल पर यदि अपने पाठकों और प्रेक्षकों को वैचारिक ऊष्मा प्रदान करने का कार्य किया तो शिल्प के धरातल भी मौलिक रंग-परंपराओं को प्रयुक्त कर नाटक को 'अपनी जड़ और अपनी मिट्टी' का बनाने का प्रयास किया। भारतवर्ष के अन्यान्य भाषायी नाटकों की तुलना में जब हिन्दी-नाटक की विकास परम्परा को लक्ष्य किया जाता है तो एक तथ्य स्पष्ट होता है कि हमारे यहां विरासत में प्राप्त संस्कृत और लोक रंग-परम्परा की विशाल थाती का उपयोग करने में इसने शिथिलता ही दिखायी है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी नाटक को उसकी संस्कृत और लोक-परम्परा से जोड़ने का जो प्रयास किया वह उनके बाद बिखर गया। एक ओर, श्री जयशंकर प्रसाद ने उसे अधिकाधिक कल्पनाशील बनाकर उसे अभिव्यक्ति-मंच से उठाकर मानसिक-रंगमंच पर ला बैठाया। फलतः एक ऐसी भ्रान्ति को जन्म दिया जिसके कारण प्रसाद जी को पाठ्य-नाटककार कहकर उन्हें नाट्य-कर्म में स्कांगी करार किया गया। दूसरी ओर, लोक तत्व की सामान्य रुचियों को दृष्टि में रखते हुए उसे भरपूर मनोरंजन देने के लिये एक व्यावसायिक नाट्य- लेखन और मंचन की परम्परा प्रारम्भ हुई जो किसी न किसी प्रकार से हिन्दी नाटकों में तथाकथित रंग-शून्य को भर रही थी। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों के समक्ष उक्त दोनों स्थितियां अनेक प्रश्नों के साथ उपस्थित थीं। एक ओर उन्हें दर्शक सापेक्ष इस विधा में जन-जन के सुख-दुःख और जीवन में उठने वाले प्रश्नों को अभिव्यक्ति देनी थी और रचना की प्रासंगिकता के दायित्व को पूरा करना था। साथ ही, नाटक को

रंगमंच की सम्भावनाओं से इस प्रकार जोड़ना था जो केवल मनोरंजन की वाहक ही न बने प्रत्युत सार्थक अर्थवत्ता के स्पष्टीकरण में भी सहायक हो । इन दृष्टियों को समेटा रख हिन्दी में नाट्य-लेखन की एक अभिनव परंपरा का प्रारम्भ हुआ जिसे रंग-नाटकों की परंपरा के नाम से पहिचाना गया । इस 'रंग' शब्द का क्षेत्र बड़ा व्यापक है क्योंकि इसमें नाट्य-लेखन के साथ-साथ अभिनय, निर्देशन और आस्वादन के पक्ष भी जुड़े हुए हैं । यह रंग-नाट्य परम्परा प्रयोगधर्मी ही नहीं है प्रत्युत प्रयोगों को प्रेक्षकों की स्वीकृति दिलाकर एक रचनात्मक अर्थ प्रदान किया गया है । प्रयोगों के मध्य नवीन रंग मूल्यों की तलाश इस रंग-परम्परा का अभीष्ट है ।

इस नयी रंग-परम्परा ने अनेक समर्थ नाटककारों को जन्म दिया और डा० लक्ष्मीनारायण लाल उनमें से एक हैं । उनके नाटकों में रंगमंचीय-बोध से सम्पृक्त होने की प्रक्रिया एक रचनात्मक आन्दोलन के रूप में मिलती है और इसी कारण उनके नाटकों के अध्ययन का मूल आधार ही विषय-वस्तु में निहित रंग-बोध है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध डा० लाल के इसी नाट्य-व्यक्तित्व को उनके कृतित्व द्वारा खोज निकालने का एक विनम्र प्रयास है ।

डा० लाल के नाटकों का विषय जीवन के बहुविध प्रश्नों से जूझता हुआ उनसे आत्म साक्षात्कार और तब एक रचनात्मक मार्ग की तलाश का प्रयत्न कहा जा सकता है । उनके नाटकों में यथास्थितिवाद से उत्पन्न जड़ता को तोड़कर प्रश्न करने का मनोबल प्रदान करने का प्रयत्न देखने को मिलता है । इसी धरातल पर खड़ा होकर नाटककार अपने अभीष्ट जीवन-सन्देश को प्रेक्षकों तक पहुंचाने में सफल हुआ है । डा० लाल के नाटक हिन्दी के नव-रचनाकारों की उस चेतना को भी इंगित करने वाले हैं जो स्वतंत्रता के बाद क्रमश: 'मूल्यों' के संक्रमण के रूप में समेटा आयी है । यह मूल्य-संक्रमण किसी भी रचनाकार के लिये एक व्यापक विषय-वस्तु का क्षेत्र प्रदान करता है । और इसे उजागर करना इन पंक्तियों के लेखक के लिये एक प्रकार के सामाजिक दायित्व के निर्वाह का कार्य है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध में इसी दायित्व-बोध को सामने रखा गया है । लाल का नाट्य-साहित्य चिन्तन के धरातल पर अनेक प्रश्नों,

जिज्ञासाओं और परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाली मान्यताओं के सन्दर्भ में एक अस्पष्ट रचना-बिम्ब का निर्माण करता है । शोध की प्रक्रिया से गुजरकर इस बिम्ब को स्पष्ट करने का प्रयास भी इन पंक्तियों के लेखक के लिये एक चुनौती का कार्य कर रहा है जिसका निर्वाह करने का प्रयास किया गया है । डा० लाल का नाट्य-साहित्य जीवन-दृष्टि का एक बहुत बड़ा फलक हमारे समक्ष रखता है और उस जीवन-फलक पर अपने वर्तमान को उकेरने का उनका प्रयत्न उनके नाटक 'अन्धा कुआ' से लेकर 'सगुन-पंछी' में मिलता है । इस वर्तमान का आकलन इस शोध-प्रबंध का एक और उद्देश्य है । इसके लिये विविध काल-खण्डों से गुजरकर नाटककार की उपलब्धियों तक पहुंचने का प्रयत्न किया गया है ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक को रंगमंच-अनुष्ठान से जोड़ने का आग्रह डा० लाल के नाट्य-साहित्य में सर्वत्र देखने को मिलता है । इसका रूप और प्रकृति क्या है- इसे किन रंग-प्रविधियों के मध्य लाल ने अपने नाटकों में स्थान दिया है- यह आकलन एक दिलचस्प और गहन अध्ययन की ओर प्रेरित करता है और प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में इस दृष्टि से विवेचन कर नाटक को उसके वास्तविक समीक्षा-रूप से जोड़ने का प्रयास किया गया है । नाटक का मंचीय अनुष्ठान उसमें निहित कार्य-व्यापार द्वारा प्रमुखत: संचालित होता है और लाल के नाटकों में इस कार्य-व्यापार, उसमें निहित लय और रंगमंचीय काव्य को स्पष्ट करने की दिशा में प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ से व्यापक समीक्षा-धरातल प्राप्त होगा, ऐसा विश्वास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध केवल एक व्यक्ति के नाट्य-कर्म को उसकी समग्रता में देखने का प्रयास नहीं है प्रत्युत उसके माध्यम से स्वतंत्रता के बाद के हिन्दी नाटक के रचनात्मक आन्दोलन में आये मोड़ को भी दृष्टि देने का प्रयत्न है । डा० लाल का नाट्य-व्यक्तित्व व कृतित्व स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक के व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण पहलू है।वह एक दिशा निर्देश है जो हिन्दी के नये नाटकों को अपनी रंग परम्पराओं से जोड़ने का आग्रह करता है । अतएव इस विषय पर शोध-कार्य कर व्यक्ति के सन्दर्भ में

एक नवीन नाट्यान्दोलन की प्रकृति को समझा जा सकता है । इसके अतिरिक्त अब तक डा० लाल के नाट्य-व्यक्तित्व व कृतित्व पर शोध-कृति की आवश्यकता अनुभव भी की जाती रही है । डा० दयाशंकर शुक्ल(लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक और रंगमंच), डा० रघुवंश(कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल) और श्री नरनारायणराय(नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य-साधना) के इस दिशा में किये गये प्रयत्नों की परंपरा में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध नयी समीक्षा-भूमि तैयार कर सकेगा- ऐसा विश्वास है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नाटक और रंगमंच के बहुविध पक्षों की दिशा में अध्ययन के विस्तृत आयामों की सम्भावनाओं को उजागर करता है । प्रत्येक विषय की एक सीमा होती है- प्रस्तुत प्रबन्ध भी सीमाओं से बंधा है । अतएव भविष्य में इस सन्दर्भ में और भी चिन्तन,मनन की सम्भावनाएं छोड़ता है । डा० लाल के नाटकों की प्रस्तुतियां, उनके मंचनों की तुलनात्मक समीक्षाएं आदि बिन्दु भविष्य में भी शोध-कर्ताओं को आमन्त्रित करेंगे- ऐसा विश्वास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध छ: अध्यायों में विभाजित है । प्रथम तीन अध्यायों को `स्थापना`, चतुर्थ अध्याय को `रंग-यात्रा`, पंचम अध्याय को `रंग-समीकरण एवं षष्ठ अध्याय को `आकलन` नाम से अभिहित किया गया है । ये नामकरण अध्यायों में विवेच्य सामग्री को एक समग्र दृष्टि देने का कार्य करते हैं ।

प्रथम अध्याय में डा० लाल के जीवन-वृत्त के उल्लेख के साथ उनके व्यक्तित्व-विकास को समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है । बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक से प्रारम्भ सामाजिक परिवर्तन की दिशा और व्यक्तित्व-~~[illegible]~~ निर्माण में उसके प्रभाव को भी यहां देखने का प्रयास है । इसी सन्दर्भ में सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त और तत्कालीन परिस्थितियों पर एक दृष्टि डाली गयी है । साहित्यिक मूल्यों में परिवर्तन की दिशाएं और विकासशील व्यक्तित्व पर समकालीन हिन्दी नाटक, एकांकी, अव्यावसायिक व व्यावसायिक नाट्य-मण्डलियों, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अयथार्थवादी रंग चेतना एवं बंगला नाटक के प्रभावों की चर्चा भी विस्तार से हुई है ।

द्वितीय अध्याय में लाल के नाट्य-साहित्य में रचनात्मक धरातल की विकास-प्रक्रिया पर एक दृष्टि दी गयी है एवं नाटकों का विषय, उद्देश्य, नाट्य शिल्प और मनोवृत्ति की दृष्टि से एक समग्र विभाजन किया गया है। किसी भी कृति की रचना-अवधि में लेखक एक विशेष संवेदना और वैचारिक मानस-भूमि में जीता है। यही मानसिक पृष्ठभूमि रचना में संकेतित होती है। इस रचनात्मक धरातल का निर्माण लेखक में क्रमिक विकास के रूप में होता है जो उसकी रचना में मूर्त हो उठता है। लाल के साहित्य में यह क्रमिक विकास देखने को मिलता है। इस अध्याय में अनेक चरणों में रचनात्मक धरातल के स्वरूप को खोजने का प्रयास है।

तृतीय अध्याय में लाल के नाट्य-सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों का अध्ययन किया गया है। इन ग्रन्थों के सैद्धांतिक पक्ष के साथ-साथ ऐतिहासिक सन्दर्भों को भी उभारने का प्रयास किया गया है। परिचय के साथ ही इन ग्रन्थों को नाट्य-समालोचना की कसौटी पर कसकर निष्कर्ष निकाले गये हैं।

चतुर्थ अध्याय में लाल के नाट्य-साहित्य (सम्पूर्ण) का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नाटकों को कालक्रमानुसार पांच उप खण्डों में बांटा गया है। इस प्रकार लाल के नाटकों को क्रमशः उत्थान, संघर्ष, अभिव्यक्ति के संकट और परम्पराओं से आधुनिकता की खोज के क्रम में विवेचित किया गया है। नाटकों का वस्तु व शिल्प- दोनों स्तरों पर विवेचन करते हुए कथ्य, चरित्र, भाषा-सम्वाद, अभिनयात्मिका वृत्ति और कार्य व्यापार में इसकी अभिव्यक्ति एवं अन्य रंगमंच-सम्भावनाओं को अपने अध्ययन में अनुस्यूत किया है।

पंचम अध्याय में लाल के एकांकी और बाल नाटक का अध्ययन प्रस्तुत है। एकांकी का विभाजन और उसमें निहित रचनात्मक धरातल की विकास प्रक्रिया के का आधार लगभग वही है जो उनके सम्पूर्ण नाटकों का है। बाल नाटक के अध्ययन में बाल मनोविज्ञान के आयामों को भी युक्त कर उसी सन्दर्भ में विवेचन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में लाल की लगभग पांच दशकों की नाट्य-यात्रा का रंग-अवधारणा के स्तर पर आकलन किया गया है । लाल के नाट्य-साहित्य में रचना और शिल्प किस रूप में विकसित हुआ है- इसका समग्र मूल्यांकन भी किये जाने का प्रयास है ।

उपर्युक्त अध्यायों में उद्धृत प्रसंगों व विद्वानों की विषय से सम्बंधित मान्यताओं के विवेचन के अतिरिक्त अन्य स्थापनाएं अनिसन्धित्सु के मौलिक और विनम्र प्रयास का फल हैं । इस सन्दर्भ में उन सभी विद्वानों के प्रति आभारी होना अनुसन्धित्सु का नैतिक दायित्व है । अनुसन्धान की दिशा में माननीय डा० लाल और उनके परिवारजन का जो सहयोग और स्नेहाशीर्वाद प्राप्त हुआ है- उससे शब्द-मात्र द्वारा उऋण नहीं हुआ जा सकता । उनका स्नेह सदैव बना रहे- ऐसी कामना है । महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय- बड़ौदा के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० मदनगोपाल जी गुप्त के प्रति आभार प्रदर्शित करना अनिसन्धित्सु अपना विनीत कर्तव्य समझता है जिन्होंने उक्त विषय पर शोध-कार्य हेतु अनुमति प्रदान कर उत्साह वर्द्धन किया । इस उत्साह में वृद्धि सत्र १९७६-७७ में प्राप्त यू० जी० सी० जूनियर रिसर्च फैलोशिप द्वारा भी हुई- तदर्थ विश्वविद्यालय-प्रशासन (एवं यू०जी०सी०) धन्यवाद का पात्र है ।

और अन्तत: शोध-निर्देशक के रूप में ही नहीं प्रत्युत प्रस्तुत विषय के मर्मज्ञ समीक्षक और उक्त विषय पर कार्य करने की शुभ प्रेरणा प्रदान करने वाले डा० दयाशंकर शुक्ल (रीडर, हिन्दी विभाग, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय-बड़ौदा) के प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए इन पंक्तियों का लेखक कामना करता है कि उनकी प्रेरणाएं, निर्देशन और स्नेह सदैव नाट्य-समीक्षा की दिशा में नये धरातलों की खोज हेतु प्रेरित करता रहेगा ।

राकेश तैलंग

(राकेश तैलंग)